आर्थिक अपग्रहण' की राष्ट्रवादी आलोचनाः एक समीक्षात्मक अवलोकन

अनिल कुमार
जे॰ आर॰ एफ॰
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत के धन और सम्पत्ति का ब्रिटेन की ओर एकतरफा पलायन, जिसके एवज में भारत को कोई लाभ नही मिल रहा था, इस प्रक्रिया को 'आर्थिक अपग्रहण' या 'Drain of Wealth' के नाम से जाना जाता है। भारतीय धन के इस बहिर्गमन की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रथम प्रयास दादा भाई नौरोजी ने किया। उन्होंने लंदन में आयोजित ईस्ट इंण्डिया एसोसिएसन की बैठक में 1867 में अपने लेख 'England Debt to India' से पहली बार 'धन के निष्कासान' या 'आर्थिक अपग्रहण' के सिद्धांत को पस्तुत किया। कलांतर में दादा भाई नौरोजी ने 1870 में 'The wants and means of India' 1871 में 'On the commerce of India' तथा सबसे स्पष्ट और विस्तृत रूप से 1872 में अपनी पुस्तक 'Poverty and Unbritish rule in India' में धन के निष्कासन के बारे में व्याख्या प्रस्तुत की।[1] इसके पश्चात एम0जी0 रानाडे, आर0सी0दत्त, जी0वी0 जोशी, जी0एस0 अय्यर तथा पी0सी0 राय आदि ने भी इस पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला।

महादेव गोविंद रानाडे ने 1872 में 'Essays on Indian economy' में धन के निष्कासन के बारे मे व्याख्यान प्रस्तुत किया और कहा कि राष्ट्रीय पूंजी का 1/3 हिस्सा ब्रिटिश शासन के द्वारा भारत से बाहर भेज दिया जा रहा है।[2] रमेश चंद्र दत्त ने अपनी पुस्तक 'Economic History of India' में धन बहिर्गमन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि भारत के सकल राजस्व का लगभग आधा हिस्सा भारत से बाहर चला जाता है। इन्होंने धन के निष्कासन को 'बहते हुए घाव' संज्ञा दी। ये आगे कहते हैं कि मुगलों या मराठों ने जनता को लूटा किंतु जनता की सम्पत्ति देश में ही बनी रही और देश मे ही निवेश भी की गई किंतु ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता का धन विदेश भेजना शुरू कर दिया और वहीं उसकी लागत हुई। नादिरशाह जैसे लुटेरे भारत में आए और लूटने के बाद वापस चले गए, इसलिए उनसे सम्पत्ति की हानि

अस्थायी और आंशिक रही किंतु ब्रिटिश शासन के अधीन धन की निकासी उनके सरकार और शासनतंत्र का अपरिहार्य अंग है। इसलिए यह हानि अविरल और प्रतिवर्ष निरंतर बढ़ती रहती है। इस प्रकार जख्म को सदैव हरा रखा गया है और धन की निकासी एक अत्यधिक पीड़ादायक चोट बनी हुई है।[3] मद्रास के अध्यक्ष जान सुलिवान ने खुद कहा था कि हमारी व्यवस्था बहुत कुछ स्पंज की तरह है, जिसके जरिए गंगा के तट से सारी अच्छी चीजों को सोख लिया जाता है और टेम्स नदी के किनारे लाकर उसे निचोड़ा जाता है।

दादा भाई नौरोजी ने कहा कि ' धन का बहिर्गमन समस्त बुराइयों की जड़ है' और भारत की गरीबी का मुख्य कारण है। इन्होंने धन निष्कासन को 'अनिष्टों का अनिष्ट' (Evil of all evil) की संज्ञा दी। दादा भाई नौरोजी के अनुसार भारत का धन बाहर जाता है तथा वह धन भारत में ऋण के रूप में पुनः आ जाता है और इस ऋण के लिए अधिक ब्याज देना पड़ता है, इस प्रकार एक 'ऋण कुचक्र' की तरह बन जाता है। नौरोजी ने भारतीयों को उनके देश में विश्वास, उत्तरदायित्व और पदों से वंचित करने की नीति को 'नैतिक निकास' की संज्ञा दी।[4] 1895 ई0 में नौरोजी ने इस मुद्दे को वेल्वी कमीशन के समक्ष रखा। भारतीय राष्ट्रीय क़ांग्रेस द्वारा अपने कलकत्ता अधिवेशन–1896 में धन निष्कासन सिद्धांत को स्वीकार किया गया। 1909 ई0 में लेजिस्लेटिव काउंसिल में भाषण देते हुए गोखले धन निष्कासन सिद्धांत को प्रस्तुत किया।

ब्रिटिशकाल में अंग्रेजों द्वारा आर्थिक अपग्रहण की प्रक्रिया को कई माध्यमों से अंजाम दिया गया, जिसे राष्ट्रवादी विचारकों ने निम्न प्रकार से समझने का प्रयास किया–

सर्वप्रथम अंग्रेजों ने व्यापारिक एकाधिकार तथा भू–राजस्व पर नियंत्रण, युद्धों तथा जबरन धन वसूली के माध्यम से भारत का एकतरफा शोषण किया और 1813 में मुक्त व्यापार की नीति अपनाई तो पक्षपातपूर्ण आयात–निर्यात कानून बनाकर तथा औद्योगिक हितों की पूर्ति के लिए भारत को एक औपनिवेशिक बाजार के रूप में परिवर्तित कर भारत से काफी धन अंग्रेजों ने इंग्लैण्ड भेजा। भारत में विऔद्योगिकरण किया गया जिससे कि अंग्रेजों का बाजार प्रभावी हो सके एवं भारत से अधिक–से–अधिक धन कमाया जा सके। इसके साथ–साथ कम्पनी शासन की समाप्ति के बाद भी धन निर्गमन जारी रहा। रेलों में पूंजी निवेश पर

सरकार ने निश्चित दर पर मुनाफा देने की घोषणा की। यद्यापि इसमें 1900 ई0 तक 4 करोड़ पौण्ड का नुकसान हुआ, तथापि रेलवे ने शोषण और धन पलायन की प्रचुर गति प्रदान की। बाद में रेलवे से प्राप्त लाभ ब्रिटेन भेजा गया। कोयला, लोहा की खरीद तथा मिलों, चाय, पटसन, काफी, नील, कृषि आदि पर पूंजी निवेश से प्राप्त लाभ भी विदेश भेजा जाता रहा।

एक तरफ आर्थिक लूट से देश गरीबी से जकड़ रहा था और दूसरी तरफ कम्पनी ने साम्राज्य विस्तार तथा अन्य कार्यों के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा ऋण के रूप में पुनः दे दिया जाता है जिसके लिए उसे ब्याज के रूप में और धन जुटाना पड़ता है और यह सदैव के लिए एक कुचक्र है, जिसे तोड़ना कठिन है। 1792 ई0 में ऋण ब्याज सहित 70 लाख रू0 हो गया। इसके अलावा भारत से धन का निष्कासन सर्वप्रमुख रूप से ग्रहव्यय (Home Charge) के रूप में हुआ। इंग्लैण्ड की सरकार मोटी रकम के रूप में सार्वजनिक ऋण पर ब्याज, गारंटी तथा सहायता प्राप्त रेलों के खाते में ब्याज एवं वार्षिक लाभ, दूसरे निर्माण कार्यों हेतु प्राप्त कर्ज पर ब्याज, छुट्टी पर गए तथा सेवानिवृत्त सैनिकों एवं अंग्रेज अधिकारियों का पेंशन भत्ता तथा इंग्लैण्ड ने भारत सचिव दफ्तर के व्यय के मदों में भारत सरकार से वसूल करती थी। भारत में विभिन्न भागों से खरीदे गए माल का मूल्य भी इसमें आ जाता था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश धनराशि विदेशी बैंको, बीमा एवं जहाज, कम्पनी की सेवांए, विदेशी उद्योग, जैसे–चाय व पटसन के कारखानों के मुनाफे भी भेज जाते थे।[5]

इन सबके अतिरिक्त सैन्य विद्रोह दबाने का व्यय एवं चीन व अबीसीनिया के युद्ध का खर्च, मिश्र के उपद्रव को दबाने का व्यय, अफगान युद्धों का व्यय भी भारत सरकार को देना पड़ा। अमेरिकीय लेखक लेलेण्ड मैक्स के अनुसार, लंदन में ऐसा हर एक सरकारी मद जिसका सम्बन्ध भारत से निकाला जा सकता था, जिसमें इंडिया हाउस की अंगीठी साफ करने वाले की मजदूरी एवं उन जहाजों का खर्च भी था, जो चालू तो रहे किंतु किसी युद्ध में शामिल नही हुए, बेजुबान भारतीय रैय्यत के सिर पर यह सारा भार डाला जाता था। इंग्लैण्ड में भारतीय रेजीमेंटों का प्रशिक्षण व्यय भी भारत सरकार को देना होता था। दादा भाई नौरोजी तथा आर0सी0दत्त ने आर्थिक आकड़ों से सिद्ध किया कि आर्थिक दोहन के कारण

भारत की औद्योगिक प्रगति रूक गयी थी। दत्ता ने आर्थिक दोहन को भारत में निर्यात एवं उसके फलस्वरूप देश में अन्न की कमी एवं की बढ़ोत्री और मूल्यों में वृद्धि से जोड़ा। उन्होंने कहा कि भारत के कृषक अपना पेट काटकर लंदन को एक सालाना खिराज देते हैं।

उपर्युक्त तमाम तर्कों के बावजूद अंग्रेजी प्रशासकों तथा तत्कालीन ब्रिटिश विद्वानों ने भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा दी गई आर्थिक अपग्रहण की आलोचना की है। सर जान स्ट्रेची ने कहा कि धन निकासी का कोई अर्थ नही है, क्योंकि भारत ने इंग्लैण्ड से बहुत कुछ लिया है जिसके बदले अंग्रेजों को कुछ नही मिलता है, सिवाय उसके जो अंग्रेजों की सेवाओं और खर्च की हुई उनकी पूंजी के बदले मिलता है।[6] मारिस डी0 मारिस ने कहा कि चूंकि धन की निकासी के कोई निश्चित आंकड़े ही नही है, इसलिए यह बताना कि धन की निकासी हो रही थी, सही नही है।[7] मैरीसन, नोवेल्स तथा नेरा एन्स्टे ने कहा कि सम्पत्ति के पलायन से सम्बद्ध आंकड़ों से अदृश्य आयातों, यथा–जलयान, सेवाओं, बीमा, व्यय, भारतीय विद्यार्थियों की यात्रा तथा अन्य व्यय की कटौतियाँ नही की गई। इसके अलावा सोने–चांदी के भारी मात्रा में आयात को भी ध्यान में रखना चाहिए। इसके अनुसार भारत के आर्थिक विकास और समृद्धि के लिए ऋण पर ब्याज सम्पत्ति पलायन का सर्वाधिक भाग है। इस प्रकार भारत को अधिकांश निर्यात की पर्याप्त आर्थिक क्षतिपूर्ति हो गयी। ब्रिटिश नागरिकों को व्यक्तिगत भुगतान के बदले भारत की कुशल और योग्य, ब्रिटिश अधिकारियों की सेवाएं प्राप्त हुई।[8]

इसके प्रत्युत्तर में नौरोजी के विचार थे कि वस्तुतः भारत को प्रदत्त ऋण पूर्व में भारत से प्रेषित धन ही होता था। विदेशी पूंजी निवेश यथार्थ में लाभदायक न था, क्योंकि रेलवे आदि का विकास भारतीयों की उपेक्षा ब्रिटिश आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया था। इससे ब्रिटिश उद्योगों को भारतीय बाजार प्राप्त होते तथा कच्चामाल मिलने में सुगमता होती थी। ब्रिटेन के लौह उत्पाद भी रेलवे को उपयोगी समझते थे। साथ ही रेलवे के माध्यम से सरकार अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी एवं द्रुतगति से शासन कर सकेगी, रसद व सैन्य व्यवस्था की गतिशील बना सकेगी, जिससे आंतरिक विद्रोहों, का दमन सरल हो जाएगा तथा विदेशी आक्रमणों से साम्राज्य की सुरक्षा भी सरल हो जाएगी। सार्वजनिक ऋण का स्वरूप भी राजनीतिक था न कि इसके सम्बन्ध आर्थिक विकास से जुड़े थे। सार्वजनिक ऋण अफगान,

बर्मा, मिश्र के युद्धो के व्यय, ब्रिटिश सम्राट को भारतीय क्षेत्रों के स्थानांतरण के कारण शेयर धारकों को कम्पनी द्वारा दी गयी क्षतिपूर्ति के लिए लिया गया था। ब्रिटिश अधिकारियों को प्रदत्त वेतन भी निरर्थक था क्योंकि नौरोजी के अनुसार भारत में नियुक्त उच्च पदस्थ यूरोपीय भारत में रुपया एवं अनुभव कमाते हैं, और जब वे भारत छोड़कर जाते हैं तो दोनों ही चीजें अपने साथ ले जाते हैं। साथ ही अंग्रेजों की भारत में नियुक्तियों से नैतिक हानि हुई तथा बुद्धि एवं साहस भी कमजोर हुआ। समस्त भारतीय समुदाय की मानसिक योग्यता कुंठित हो गयी। इसलिए नौरोजी ने कहा कि यह भारत का आर्थिक ही नहीं, वर नैतिक शोषण भी है।

जहां तक इस बात का प्रश्न है कि औपनिवेशिककाल में भारत से कितनी धन की निकासी हुई तो यद्यपि इस पर सभी विद्वानों में एक निश्चित मतैक्यता का अभाव है किन्तु उपर्युक्त माध्यमों से एक बड़ी मात्रा में भारतीय पूंजी के इंग्लैण्ड की ओर पलायन की बात पर सभी विद्वानों की सहमति है और ये अपने–अपने अनुसार सम्पत्ति पलायन के रूझान देने का प्रयास करते हैं। दादा भाई नौराजी ने बताया कि धन की निकासी जहां 1835–39 में 53 लाख पाउण्ड थी, वहीं 1905 में बढ़कर यह राशि 51.5 करोड़ रु0 प्रतिवर्ष हो गयी। आर0सी0 दत्ता ने यह राशि 1901 में 2 करोड़ पाउण्ड बताई है। दीनशा वाचा ने 1885 में यह राशि 25 करोड़ पाउण्ड आंकी और जी0वी0 जोशी ने यह अनुमानित राशि 1834–1888 के बीच 66 करोड़ पाउण्ड बताई। इरफान हबीब ने भी अपने सर्वेक्षण में बताया है कि धन की निकासी का आंकड़ा जहां 1836 में 7 करोड़ रु0 प्रतिवर्ष था वहीं 1910 में यह आंकड़ा 40 करोड़ प्रतिवर्ष पहुंच गया। इस प्रकार यद्यपि राष्ट्रवादी इतिहासकारों में धननिकासी के आंकड़ो पर मतैक्यता नहीं थी किन्तु यह बात सभी इतिहासकारों एवं राष्ट्रवादियों में एक समान थी कि धन की निकासी एक बड़ी मात्रा में भारत से इंग्लैण्ड की ओर हो रहा है।[9]

इन तमाम अध्ययनों, सर्वेक्षण के साथ राष्ट्रवादियों द्वारा जनता एवं सरकार के समक्ष प्रचारित किए जा रहे 'धन की निकासी' या 'आर्थिक अपग्रहण' के सिंद्धान्त का प्रभाव यह रहा कि भारतीय राष्ट्रवाद को एक आधार मिल गया और अब यह सिर्फ विदेशी शासन के विरोध की भावना तक सीमित नही रहा बल्कि इन्हे ब्रिटिश की मूलभूत आलोचना का आधार मिल गया। इसके साथ–ही–साथ इस सिद्धान्त के माध्यम से जनता की विदेशी शासन का

कुल्सित रूप समझना तथा उनमें चेतना पैदा करना आसान हो गया। विपिन चंद्रा बताते हैं कि 'आर्थिक अपग्रहण' के सिद्धान्त उसे कांग्रेस के अंदर उग्र भावना आयी और वे औपनिवेशिक संरचना के सच्चे स्वरूप को समझ सके तथा उसके प्रबल विरोध के लिए तैयार हो सके।[10]

संदर्भ ग्रंथ

1. नौराजी, दादाभाई (a) England debt to India
   (b) The wants and means of India
   (c) On the commerce of India
   (d) Poverty and Unbritish rule in India
2. रानाडे, एम0जी0 - Essays on Indain Economy
3. दत्त, रमेश चंद्र - Economic History of India
4. नौरोजी, दादा भाई - Poverty and Urbritish rule in India
5. दत्त, रजनी - India Today
6. कामिका, बी - Reconstructing Indian Economic History
7. मॉरिस डी0 मारिस - Economic History of India
8. रॉब, पीटर - British rule and Indian Improvement
9. सरकार, सुमित - Modern India
10. चंद्र, विपिन - भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्‌भव और विकास